ज़िन्दगी का सिस्टम

आयतुल्लाहिल उज़्मा सैय्यिदुल उलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त - 8

बावजूद इसके कि इनमें काफिरों के आम लोग इस बात से बिल्कुल अनजान हैं कि पूजी जाने वाली मूर्तियां खुदा के ध्यान का रास्ता हैं, बल्कि वे मर्तियों को सच्चा भगवान समझते हैं और ये कहना कि हम मूर्तियों को खुदा नहीं मानते बल्कि मानते तो एक खुदा को ही हैं और ईश्वर को निराकार मानते हैं और ये बुत मूर्ति सिर्फ़ उसकी याद का एक ज़रिया है । ये बात सिर्फ़ एक सीमिति पढ़े लिखे (वर्ग) के लोग ही कहते हैं, जो अपने बाप-दादा के चलन को अपनी तर्क (Logic) से सही ठहराना चाहते हैं । इसके अलावा हम देखते हैं कि अरब के जाहिल काफ़िर भी अपनी मूर्ति पूजा के बारे में यही तर्क देते थे। इसी से कुर्आन मजीद ने उनकी बात को दोहराया है कि वह कहते हैं - *''मा नाबुदु हू इल्ला लियक़ूरबूना इलल-लाहि ज़ुल्फ़ा ''* (हम इनकी (मूर्ति की) सिर्फ़ इसलिए पूजा करते हैं कि इनके जरिये से हम अल्लाह के नज़दीक हो जाए।) इसका मतलब ये है कि ये अल्लाह की हस्ती को अलग मानते हैं और वह बुतों को उससे जुड़ा हुआ नहीं मानते एक जगह है -'' अगर इनसे पूछो कि आसमान और ज़मीन को किस ने पैदा किया तो ये कहेंगे, अल्लाह ने '' इससे पता चलता है कि वह मर्तियों को दुनिया का बनाने वाला भी नहीं समझते थे । सच्चाई ये है कि दो चीज़ें हैं एक ' शिर्क फ़िल उलूहिया '' यानी सचमुच अल्लाह को ख़ुदा न मान कर किसी और चीज़ को खुदा मानना और दूसरी चीज़ है ''शिर्क फ़िल इबादः'' यानी (दिल में चाहे 'एक' खुदा (निराकार ईश्वर) का यक़ीन हो खुदा के अलावा किसी और की पूजा करना । पहली तरह का शिर्क करने वाले देखने में दुनिया का कोई गुट नहीं है । कुर्आन ने जिसको शिर्क कहा है वह दूसरे ही तरह के लोग हैं और इस तरह हिन्दु जो मूर्ति पूजा को मानते हैं वह अपने मूर्ति पूजा को कुछ भी बताएँ या बात बनाने को कुछ भी कहें वे 'मुशरिक' (शिर्क करने वाला) की परिभाषा से बाहर नहीं हो सकते।

रह गये यहूदी और ईसाई, उनको कुर्आने मजीद में साफ़-साफ़ कई जगह मुशरिक (खुदा के साथ किसी और को साझी समझने वाला) बताया गया है । एक जगह कहा गया है कि '' यहूद कहते हैं कि उज़ैर अल्लाह के बेटे हैं '' '' आखिर में है '' अल्लाह उन सब से ऊँचा है जिनको उस का साझी बनाते हैं।
और इसाईयों के लिए ईसा से कही हुई बात दुहराई गई है ।''और इसाईयों से कहा जा रहा है कि ''
इसमें साफ़ इसाईयों के मानने को एक खुदा के मानने का उल्टा बताया गया है। और इसी से आपको मालूम होगा कि आर्य समाज खुदा के साथ आत्मा/रूह और वस्तु माद्दे को हमेशा से अनादि रहने वाला मानते हैं, तो वह सभी इसाईयों के ही रास्ते पर चलते हैं। और ईरान के 'पारसी' नूर (उजाले) और अंधेरे को दुनिया को शुरू करने वाला मानने की वजह से 'मुशरिक' ठहरते हैं। फिर जिन में अली बिन जाफ़र, मोहम्मद बिन मुस्लिम की रवायतों और सईदुल आरज की भरोसे वाली रयायत है, ये साफ़-साफ़ मजूस (Magian) को नजिस बताते हैं और दूसरी सही हदीसों से भी यहूदियों और ईसाइयों का नजिस होना साबित होता है । इन सब बातों के ख़िलाफ एक आयत पेश की जाती है कि
''तुम्हारे लिए उन लोगों का खाना जिन्हें किताब दी गई है, हलाल है और तुम्हारा खाना उनके लिए हलाल है ।

इसका मक़सद (आस्मानी) किताब वालों को फ़तवा देना है कि वह मुसलमानों को पाक समझें बल्कि

आयत के दोनों टुकड़ों पर बराबर से देखने पर मालूम होता है कि इसका मतलब कुछ और ही है। बात ये है कि उस ज़माने में ग़ल्ले का बेचना-ख़रीदना ज़्यादातर यहूदियों और ईसाइयों के साथ था । मुसलमानों को कई आयतों में काफ़िर से दोस्ती और किसी तरह से भी उनके साथ लगाव रखने से मना किया गया था, इसलिए इनको ये चिन्ता थी कि ख़रीदना व बेचना और लेन-देन के मामले इन यहूदियों के साथ भी करना सही नहीं है । आयत ने आकर इस शक को दूर किया और बताया कि इनके साथ ख़रीदने-बेचनें और लेन-देन में कोई हर्ज नहीं है। ये मामले नजासत और पाकी से कुछ भी जुड़े नहीं है और ये कहना भी सही नहीं है कि अगर (आस्मानी) किताब वाले नजिस होते तो इस हुक्म में क़ैद या सीमा लगाने की ज़रूरत थी और जब कि यहां आ़म हुक्म है । इसमे मालूम होता है कि अलग से किसी चीज़ को मना नहीं किया गया है तो ऐसा उनसे हर चीज़ लेना जाएज़ है । ये दलील इसलिए सही नहीं है क्योंकि किसी शब्द के आम होने से उससे फ़ायदा उठाना उसी हद तक सही है जिस लेहाज़ से वह हुक्म दिया गया हो । यह मसला आपको नीचे दी जा रही बातों पर ध्यान देने से समझ में आ जाएगा। मान लीजिए कुर्आन मजीद में कुत्ते के ज़रिये से शिकार कराने को जाएज़ होने का हुक्म दिया गया है आयत में इसका कोई बयान नहीं है कि जिस जगह पर कुत्ते का मुँह पड़े उसको पाक कर लिया जाए मगर इससे ये नतीजा तो नहीं निकाला जा सकता कि कुत्ते का मुँह पाक है क्योंकि हुक्म इस लेहाज़ से है ही नहीं । वहां मक़सद ये है कि उस जानवर को तुम हलाल समझो जिसे तुमने कुत्ते के ज़रिए शिकार किया है और वह मुर्दा (बिना ज़बह किया) नहीं है कि उस का खाना हराम हो । रह गया ये कि कुत्ते का मुँह नजिस है ये अपनी जगह पर साबित है और बताया गया है, उसी तरह यहां जो कुछ भी कहा जा रहा है वह ये कि उनके साथ ख़रीदना बेचना और व्यापारी रिश्ते रखने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन ये कि कौन सी चीज़ें इनके हाथ की पाक होंगी कौन नजिस, ये हरगिज़ इस आयत में नहीं बताया जा रहा है । देखिए तो कि किताब वालों के खाने मे कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जो ख़सतौर से मुसलमानों के लिए हराम है, जैसे सुवर का गोश्त वग़ैरह । तो क्या इस आयत से ये नतीजा निकाला जा सकता है कि उन चीज़ों का भी लेना जाएज़ है? क्योंकि इस आयत में कोई चीज़ आम नहीं की गयी है । इसी तरह वह चीज़ें कि जो हाथ लगने की वजह से नजिस हो जाती है ऐसे–इस तरह कि वे पाक नहीं की जा सकती है इस आयत में आम हुक्म होने पर उनका लेना जाएज़ नहीं हो सकता ।

और फिर मासूम इमामों अ0 की हदीसों ने जिनमें हर तरह की सही रवायतें मौजूद हैं, ये बता दिया है कि इस आयत में 'खाने' का मतलब सूखा अनाज और फल और सब्ज़िया हैं। इसके बाद कोई शक नहीं रहता कि इस आयत की नज़र सिर्फ़ ख़रीदने और बेचने के मामले पर है । पाकीजगी और नजासत से इसका कोई लगाव नहीं है

इस के बाद यह देखिये कि यह हुक्म शिया मज़हब की मानी हुई बातों में है जैसे मुताअ़ और तक़ईया के मसले जो सुन्नी फ़िरक़े के मुक़ाबले में अलग है। इस मसले में पहले और बाद के शीया आ़लिम एक मत हैं इस लिये यह शिया धर्म की मानी हुई अटल बातें हैं। अगर अक़्ल से ग़ौर किया जाये तो आप को मालूम होगा कि यह नजासत का मसला शिया समुदाय में अगर किसी जज़्बे की वजह से बनावटी होता तो वह क्या जज़्बा हो सकता है? सिर्फ़ ताअ़स्सुब द्वेष और नफ़रत। पर सच बताइये कि शियों को अपने ही मुस्लिम समुदाय के उस गुट के हाथों जो शियों का विरोधी था ज़्यादा नुक़्सान पंहुचे या यहूदियों, ईसाइयों, मजूसियों (Magians) और हिन्दुओं से। इतिहास बताता है कि शिया गुट को ग़ैर मुस्लिम समुदायों के हाथों वह दुख झेलना नहीं पड़े जो अशिया मुसलमानों के हाथों। आज भी अगर किसी शीया से पूछिये कि तुम्हारे लिए

अंग्रेज अच्छे, हिन्दू अच्छे या दूसरे मुसलमान, तो वह दुनिया की दूसरी क़ौमों को Prefer करेगा क्योंकि उनके हाथों से कोई ख़ास तकलीफ़ उन्हें नहीं पहुँची है, जितनी सुन्नी मुसलमानों के हाथ से ।

शियों की आंख में बग़दाद के बन्दीघर और बनी अब्बास के ज़ुल्म और हुमरा महल की दीवारें जिनमें सादात (सैयदों) के खून का गारा दिया गया और बग़दाद की दीवारें जिनमें सादात ज़िन्दा चुने गये और सुल्तान सलीम उस्मानी के हुक्म से सत्तर हज़ार शीयों का क़त्ले–आम नरसहार और औरंगज़ेब का शीयों का हत्यारा ख़ंजर और जहांगीर के हाथों क़ाज़ी नुरूल्लाह शूसतरी का क़त्ल वग़ैरह, ये सब वाक़ये शीयों की नज़र के सामने आते हैं तो जिस्म पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । इन हालात में ज़ाहिर है कि शीयों को नफ़रत और दुश्मनी जो कुछ भी हो सकती थी वह उन मुसलमानों से मिली । और ग़ैर मुसलमानों, जिनसे शियों को अगर मदद न भी मिली हो तब भी उनसे कोई ख़ास तकलीफ नहीं पहुँची। इस पर भी जब हम शिया फ़िक्ह (धर्म शास्त्र/शरीयत के मसले) और मज़हबी रवायतों में देखते हैं कि वह सुन्नी मुलसमानों के बावजूद इसके कि इनकी तलवारें शीयों की गर्दनों पर रहीं, फिर भी इन्हें 'पाक' कहते हैं । वह कहते हैं कि ये भले ही हमारे क़ातिल क्यों न हों लेकिन *'अल्लाह के रसूल मोहम्मद (स0)* के नाम लेवा हैं और कलमा पढ़ते हैं इसलिये इनका खाना–पानी और इनसे समाजी रिश्तों (सामाजिक सम्बन्ध Social Contact) जाएज़ हैं और एक ग़ैर मुस्लिम का खाना–पानी जाएज़ नहीं है। आप ग़ौर करें इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि ये मसला किसी मन की भावनाओं यानी अपने जी चाहने के जज़्बे पर निर्भर नहीं है, बल्कि एक शुद्ध तालीम है जो शियों को अपने इमामों (अ0) की ज़बानी पहुँची है और शिया अपनी किसी भी निजी भावना पर चले बिना इसपर चलते रहे हैं । और सुन्नी जो काफ़िर को पाक समझने लगे हैं वह देश की राजनीति (Politics) का नतीजा है, जिसके तहत उनको ज़रूरत थी कि वह दूसरे मुल्कों और बाहरी समाजों से रिश्ता बनायें। लेहाज़ा जंग–विजयी की पालिसी के तहत उनको ज़रूरत हुई कि वह इस्लाम के मज़बूत हुक्म का चाहे न चाहे दूसरा मतलब निकालें और अपने लिए काफ़िरों के साथ रिश्ता बनाने का रास्ता खोल लें ।

अब देखना ये है कि इस्लाम के इस हुक्म की मसलहत या दर्शन क्या हो सकता है । ये पहले कहा जा चुका है कि नजासत शरीयत का एक हुक्म है जिसके लिए किसी चीज़ में गन्दगी या ज़हरीलेपन का होना ज़रूरी नहीं है बल्कि इसकी बहुत सी मसलहतें हो सकती हैं । काफ़िर को नजिस ठहराने का ये मतलब नहीं है कि उनमें किसी तरह की गन्दगी है। हरगिज़ नहीं, बल्कि बहुत मुम्किन है कि कोई ग़ैर मुस्लिम इन्सान एक मुसलमान से ज़्यादा साफ़–सुथरा रहता हो। क़ाफिर को नजिस ठहराने की वजह उनसे नफ़रत पैदा करना भी नहीं है क्योंकि इस्लाम तो हुक्म देता है कि किसी का दिल न दुखाओ और हर एक से अछे से शिष्टाचार से पेश आने को पसन्द करता है, बल्कि इसकी मसलहत कुछ और ही है ।

बात ये है कि इस्लाम ने मुसलमानों के लिए खाने–पीने और रहन सहन के तरीक़े में हर तरह से कुछ ख़ास फ़र्क़ रखा था जो ग़ैर मुस्लिमों से अलग है ।

ग़ैर मुस्लिम गुट बहुत सी ऐसी चीज़ों का इस्तेमाल करती हैं, जो मज़हब के लेहाज़ से एक मुसलमान के लिए जाएज़ नहीं है। दुनिया में 'एक प्याला व एक निवाला ' होना किसी के साथ मिल जुल कर ज़िन्दगी बिताने का इतना मज़बूत और असरदार हिस्सा है कि जिससे किसी आदमी का दूसरे आदमी पर असर हो जाना और उसी के रंग में रंग जाना बहुत ज़्यादा सम्भव होता है ।

इसके ख़ेलाफ़ सिर्फ़ खाने–पीने के न होने से बीच में एक ऐसी खाई पैदा हो जाती है कि चाहे कितनी ही दोस्ती हो और आपसी मेल–जोल हो मगर फिर भी ये डर पैदा नहीं होता कि मुसलमान इन कामों को करने पर तैयार हो जाएँ, जो काम ख़ासतौर से ग़ैर–मुसलमान करते है। इसके लिये ग़ैर–मुसलमानों की नजासत के हुक्म का साफ ब्यान किया गया है। इसका मक़सद मुसलमानों को उन चीज़ों से अलग रखना था जिसके इस्तेमाल से मुसलमानों को मना किया गया है और ग़ैर–मुसलमान उनका इस्तेमाल जाएज़ समझते हैं।

याद रखना चाहिए कि एक क़ानून जो किसी ख़ास मसलहत की वजह से क़ानून के जैसा लागू हो जाए तो उसमें आम बान (Generalization यानी वह सब पर लागू होना) पैदा हो जाती है। फिर ये नहीं देखा जाएगा कि कहां वह ख़ास मसलहत है भी और कहां नहीं है।

जैसे शारदा एक्ट (Sharda Act) कुछ ख़ास नुक़सानों की वजह से लागू किया गया जो ज़्यादा तर उन हिन्दुओं के यहां जिनके यहां आम शदियों से हट कर शादियॉ होती हैं उनमें पैदा होते हैं ।

क़ानून इन नुक़सानों के लेहाज़ से लागू किया गया लेकिन इस क़ानून की तरह लागू हो जाने के बाद अब ये आम General है, अब ये नहीं देखा जाएगा कि किस जगह वह नुक़सान पहॅुच रहा है और किस जगह नहीं । अब तो बहरहाल क़ानून के बन्धन का सवाल है ।

इसी तरह क़ाफिर की नजासत का हुक्म यूँ तो सामूहिक भलाई की वजह से है जो Probability रखती है ज़्यादा खाने पर लागू होती है मगर जब इसका हुक्म आमतौर पर लागू हो गया तो अब छूट (Exemation) और छोटी–छोटी टुक्ड़ियों का कोई लेहाज़ नहीं होगा। हो सकता है कि कोई ग़ैर मुस्लिम उन बातों में से किसी बात को न करता है जो मुसलमानों के यहां नाजायज़ ह, या कोई मुसलमान ख़ास तौर से अपने बारे में भरोसा रखता हो कि मैं जितना भी 'एक प्याला एक मुंह' (उनके साथ खाऊँ पीऊँ) हूँ फिर भी दूसरों का असर मेरे ऊपर नहीं पड़ेगा, अब इन सूरतों का कोई लेहाज़ नहीं किया जाएगा क्योंकि क़ानून आम तौर पर लागू हो गया है और इस हुक्म से कोई छूट नहीं है ।

कुफ्र (नास्तिकता) और इस्लाम की हदें

अगर हक़ीक़त में देखा जाए तो इस्लाम और ईमान दोनों बड़ी मुष्किल बातें हैं, मगर पाकी और नजासत के सम्बन्ध में ऐसा हरगिज़ नहीं है वरना एक तरफ़ तो इस खोज में सच्चे मुसलमान की ज़िन्दगी अजीरन हो जाती खोज कि सचमुच मुसलमान कौन है और दूसरी तरफ़ मुसलमानों के गुट में एक बड़ी फूट की बुनियाद इस तरह पड़ जाती कि हर एक दूसरे को क़ाफ़िर कह कर उसको नजिस ठहराता और मज़हब के लेहाज़ से उससे परहेज़ करना ज़रूरी बताता ।

ज़ाहिरी तौर पर कुफ़्र और इस्लाम के बीच एक खुली हुई हद बताई गयी है और वह कलमा *"ला इलाह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह"* है जो इन्सान खुदा की तौहीद (एकेश्वरवादी खुदा का एक होना) और रसूल (स0) की रेसालत (खुदा के भेजे होने) की गवाही ज़बान से देता है वह मुसलमान समझा जाना चाहिए इस शर्त से कि इसके साथ–साथ ऐसी किसी बात का इनकार न करता हो जो सब मुसलमानों के एकमत मसले माने गये हैं, जिसे मुसलमान का बच्चा–बच्चा जानता है, जैसे – नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात वग़ैरह का वाजिब होना या शराब, बलात्कार, सुवर वग़ैरह का हराम होना ।

किसी बात का अक़ली दलील के लेहाज़ से तौहीद के विरोध की हद में पंहुचने तक ज़ाहिर बज़ाहिर कुफ़्र का कारण नहीं ठहराया गया है

पेज नं0 6 का बकिया

जबकि कहने वाला उसे इस इक़रार के साथ न

(बाक़ी पेज नं० 10 पर)

मात्रा में सज़ा दो।

इनके बाद बहुत अधिक निम्न स्तर के लोगों का ध्यान रखना भी आवश्यक है इसलिए कि यह वह लोग हैं जिनके पास कोई जीवन उपाय और साधन नहीं है। ये मुहताज, निर्धन, ग़रीब और फ़ाक़े में मस्त और मजबूर लोग हैं। इन लोगों में ऐसे भी होते हैं जो अपने हाल में संतोष रखने वाले हैं और ऐसे भी हैं जो भीख मांगने लगते हैं और अल्लाह के लिए रक्षा करो उसके अधिकार की जो उन लोगों के बारे में है और उनके लिए ख़ज़ाने का एक भाग निश्चित कर दो और एक भाग अपने देश के पाक गल्लों में से निश्चित करो। इस भाग में दूर और नज़दीक के लोगों के साथ समानता होनी चाहिए क्योंकि तुम्हारा उनमें से प्रत्येक के अधिकार का ख़्याल रखना कर्तव्य है। तुमको हुकूमत का गुरूर उनकी ओर से बेपरवाही में न डाल दे इसलिए कि तुमको मामूली से भी काम को न करने के मामले में मजबूर न समझा जायेगा। अतः तुमको उनकी ओर ध्यान देने में कमी न करना चाहिए और उनकी ओर मुँह फेरना उचित नहीं है।

विशेषकर उन लोगों के कामों की देखभाल रखो जिनकी पंहुच तुम तक मुशकिल है, जिन पर निगाहें ज़िल्लत के साथ पड़ती है और लोग तुच्छ समझते हैं। तुमको चाहिए कि उनकी देखभाल के लिए एक उदार ईमानदार और परहेज़गार आदमी अपने खास आदमियों में से नियुक्त कर दो। वह उनके मामलात को तुम तक पहुँचाये। फिर तुम उनके साथ सुलूक करो ऐसा जो अल्लाह के यहाँ तुम्हारी ओर से जवाब देने के अवसर पर पेश किया जाये क्योंकि यह लोग दूसरों से ज़्यादा इंसाफ़ और सद्व्यवहार के मुहताज हैं और यूं तो फिर हर एक के हक़ अदा करने में तुम्हें अल्लाह के सामने अपने को बेगुनाह रखना ही है।

यतीमों तथा वृद्धावस्था के लोगों का भी ख़्याल रखो। उनकी ज़िन्दगी का कोई सहारा नहीं जो सवाल नहीं किया करते। उनके साथ मेहरबानी और देखरेख का इन्तिज़ाम वास्तव में हाकिमों के लिए बड़ी बुरी चीज़ सिद्ध होगी लेकिन सच्ची बात तो हर एक ही को बुरी मालूम होती है और कुछ नेक बन्दों की तबीयत पर अल्लाह इन बातों को आसान भी कर देता है जो क़यामत के दिन अपनी नजात (मुक्ति) चाहते हों तो वह दुखों और मुसीबतों को बर्दाश्त करते हैं और वह संतुष्ट है कि अल्लाह ने उनसे निजात (मुक्ति) के वादे किये हैं वह पूरे होकर रहेंगे। ✦✦✦

पेज न0 6 का बकिया

जबकि कहने वाला उसे इस इक़रार के साथ कहता हो कि वह ख़ुदा को एक नही जानता बल्कि बहाने या बात बनाने से काम लेता हो।

इसी वजह से अहले सुन्नत का अशअरी सम्प्रदाय ख़ुदा के गुणों को उससे अलग मानने के बाद भी मुसलमानों की पंक्ति (Ranks) में रहा और ख़ुदा को देखने को मान कर मुजस्समे सगुण साकार मानने वालों में दाख़िल नहीं हुआ हालॉकि यह ज़ाहिर है कि आठ अनादि गुण ज़ात से अलग होने के बाद अल्लाह एक नहीं रहा और दर्शन के क़ाबिल होने के साथ जगह आयतन, और दिशा से स्वतन्त्र नहीं रह सकता और शरीर बन जाता है। मगर यह लोग उन जुड़ी बातों से नहीं हैं, कहिए कि ख़ुदा को एक नही मानते? तो वे कानों पर हाथ रखेंगे, और कहिए कि तुम ख़ुदा को साकार मानते हो तो वह इनकार करेंगे। इस लिये अ़क़ली हैसियत से वह एक मूर्खता के मुर्तकिब हों, मगर धर्मशास्त्र के हिसाब से काफ़िर नही ठहर सकते। क़ादियानी जमाअ़त में वह लोग जो मिर्ज़ा गुलाम अहमद को साफ़ साफ़ नबी कहते हों बज़ाहिर इस्लाम से ख़ारिज हैं। मगर अहमदी कि जो मुहम्मद अली साहेब के मानने वाले हैं और मिर्ज़ा गुलाम अहमद को नबी या रसूल नही मानते,सिर्फ़ एक मुजददिद (नूतनकारी) की हैसियत को मानते हैं उनके इस्लाम से ख़ारिज होने का कोई करण नहीं है।

(जारी...............)